अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २१ अक्टूबर - २०२१ प्रकाशन - १०

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

अक्टूबर २०२१

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्य मध्यमाम्

अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

विषय सूचि

अक्टूबर 2021

अविरोधितया कर्म
नाऽविद्यां विनिवर्तयेत्।
विद्याविद्यां निहन्त्येव
तेजस्तिमिरसंघवत्॥

(आत्मबोध श्लोक : 3)

अज्ञान को नष्ट करने के लिए कर्म साधन रूप नहीं हो सकता क्योंकि कर्म अज्ञान का विरोधी नहीं है। जैसे प्रकाश ही घोर अन्धकार को दूर कर सकता है, वैसे एक मात्र ज्ञान ही अज्ञान का विरोधी होने के कारण उसे नष्ट कर सकता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

अपेक्षा और निरपेक्षता

हम मूलरूप से परिपूर्ण, ब्रह्म हैं; किन्तु अज्ञानवश अपने आपको क्षुद्र जीव मानकर जीते हैं। जीवभाव से युक्त होने का अभिप्राय स्वयं को अपूर्ण समझकर जीना है। अपूर्णता की धारणा के उपरान्त ही अपेक्षा का जीवन आरम्भ होता है। अपेक्षा करनेवाला जीव होता है। निरपेक्षता के समय जो नहीं रहता है, उसे जीव का अभाव कहते हैं।

अपेक्षायुक्त जीवन दीनता से युक्त है।
निरपेक्षता का जीवन धन्यता का है।

अपेक्षा से युक्त मन राजसी होता है।
निरपेक्ष मन सात्विक होता है।

अपेक्षा और निरपेक्षता

सात्विकता का पहला पाठ असंगता और निरपेक्षता होता है।

जीवभाव से परे जाने के लिए निरपेक्षता से युक्त होना चाहिए।

दैनंदिन जीवन में अपेक्षता और निरपेक्षता देखने से जीव का विवेक होता है।

अपेक्षावान को अहं समझ कर उसमें अस्मिता रखी तो संसार पथगामी होते हैं।

निरपेक्षता से ही जीवन में अनन्त सुख के द्वार खुल जाते हैं।

निरपेक्ष होकर जीने से ही स्वस्थ, सात्विक धन्य और कृतज्ञ होते है।

ईश्वर के अस्तित्व की श्रद्धा, अपनी ब्रह्म स्वरूपता का ज्ञान, जगत के मिथ्यात्व का निश्चय इन सब का परिणाम निरपेक्षता होना चाहिए।

'अपेक्षा ही समस्त दु:खों की जननी है।'

अपेक्षा और निरपेक्षता

निरपेक्षता ही स्वस्थता है, वही वैराग्य है।
वही योग है। यही दैवीगुणों का आधार है।

निरपेक्ष होकर जीना ज्ञान को जीना है।

निरपेक्षता से ही स्वस्वरूप में जाग्रति की
यात्रा का मार्ग प्रशस्त होता है।

अत: अपनी पूर्णस्वरूपता में जाग्रति हेतु
निरपेक्ष होकर जीना ही इष्ट है, अन्यथा
जन्मान्तरों तक संसरण होना ही नियति है।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि
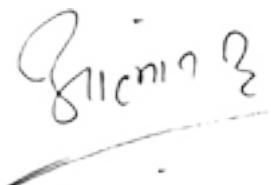
संसार से मुक्ति

संसार से मुक्ति

हर मनुष्य के जीवन में सतत अनुकूल वा प्रतिकूल परिस्थिति की प्राप्ति हुआ करती है। हमारी चाह सदैव अनुकुलता की प्राप्ति की बनी रहती है। जीवन में अनुकुलता प्राप्त होने पर हर्षित हो जाते हैं, तो प्रतिकुल परिस्थिति में शोकाकुल हो जाते हैं। हर्ष-शोक का अस्तित्व होना ही समत्व का अभाव दर्शाता है। हर्ष-शोक के क्षणों में उचित-अनुचित का भेद करने में असमर्थ हो जाते हैं, बुद्धि में अन्धकार का ही साम्राज्य दिखाई पड़ता है। विपरीतज्ञान से युक्त होकर धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मान लेते हैं। यह राजसी ज्ञान से युक्त होना है। विविध परिस्थितियां अनुकुल और प्रतिकुल आदि रूप से बदलती सी दिखाई पड़ती है।

संसार से मुक्ति

हम तत्-तद् परिस्थिति, वस्तु, व्यक्ति को अत्यधिक महत्व देते हैं। किन्तु उन विविध परिस्थितियों में विद्यमान कर्ता भोक्ता जीव एक ही रहता है। उसकी ओर कभी ध्यान ही नहीं देते हैं। जब कि बाह्य परिस्थिति महत्वपूर्ण नहीं होती है। किन्तु उसके आधारभूत कर्ता की प्रेरणा ही हर्ष-शोक के लिए हेतुभूत हुआ करती है। कर्ता स्वकेन्द्रिता से युक्त होता है, तब प्रत्येक कार्य और परिस्थिति अहं की संतुष्टि से प्रेरित, उसे ही केन्द्र में रखकर हुआ करती है।

ऐसे में उस कर्ता में तीव्र अपेक्षाओं का अस्तित्व हुआ करता है। जब जब अपेक्षा आहत होती सी दिखाई पड़ती है, तब तब मन खिन्नता से युक्त होकर शोक के सागर में डूब जाता है। यदि अपेक्षा की पूर्ति हो जाती है, तो स्वयं को ही उसका कर्ता-धर्ता मानकर अभिमान से युक्त होने लगता है। यह उसके लिए हर्ष का कारण भी बन जाता है।

संसार से मुक्ति

सर्व प्रथम तो इसके माध्यम से जीव का यह धरातल दिखाई पड़ता है कि वह मन बहुत ही सतही (छिछोला) है, जिससे थोड़ी सी अनुकुलता में हर्ष की बाढ़ से विवेक का बांध ही मानो टूट सा गया। प्रतिकुलता मे भी जगत तथा अपने बारे में मोह दिखाई देता है। जगत के विषयों के प्रति अत्यन्त महत्व की बुद्धि विद्यमान है। वह एक ऐसे क्षुद्र अहं के स्तर पर जीता है, जिसकी दीवारें अत्यन्त मजबूत हैं। प्रत्येक परिस्थिति को इस स्वकेन्द्रित 'मैं' के धरातल पर खड़े रहकर ही नापा जा रहा है। अतः जीवन में किसी कार्य के सम्पन्न होने पर, अथवा पूर्व कर्मवशात् परिस्थिति अनुकुल होने पर उसका कर्ता-धर्ता स्वयं को ही मान लेता है। जिससे अभिमान की वृद्धि होती है। यदि

'हर्ष और शोक का अस्तित्व समत्व का अभाव दर्शाता है।'

संसार से मुक्ति

कार्य में विफलता होती है और परिस्थिति प्रतिकूल होने लगती है, तब आत्मावलोकन होने के बजाय बाह्य निमित्त को ही दोषी मानने लगता है। इस वजह से उन निमित्तों के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है।

इस तरह उनका जीवन हर्ष और शोक की अतियों में ही बटा रहता है। इस वजह से अनुचित और अधर्मयुक्त निर्णय के आधार पर प्रतिक्रियाएं हुआ करती है। यह जीवन में सदैव सन्ताप और दुःख को ही बढ़ावा देता है। इन समस्याओं से मुक्ति के लिए सर्व प्रथम प्रत्येक परिस्थिति को प्रभु का प्रसाद जानें तथा अपने आपको ईश्वर के हाथों में निमित्त मात्र ही जाने। जैसे जैसे प्रसाद बुद्धि दृढ़ होगी वैसे वैसे जगत के प्रति महत्व बुद्धि कम होती जाएगी। तथा ईश्वर के हाथों में स्वयं को निमित्त जानने पर अभिमान

‘संकुचित अहं ही संसार का हेतु है।’

संसार से मुक्ति

शिथिल होगा। इस प्रकार की दृष्टि जगत के मिथ्यात्वनिश्चय को दृढ़ करती है। जगत के प्रति उपेक्षणीय अर्थात् स्वप्नवत् दृष्टि होती है, तब मनुष्य बहिर्मुखता छोड़कर अन्तर्मुख होकर आत्मावलोकन करना आरम्भ करता है और अपने मन को गहराई से समझने में समर्थ होता है।

ऐसे में अपने प्रत्येक विचार और कर्म के उपर विचार करते हुए यह देखना चाहिए कि सब समस्याएं संकुचित अहं की वजह से तथा उसे अत्यधिक महत्व देकर, उसके लिए जीने की वजह से हैं। अतः उसकी समाप्ति के लिए अन्ततः गुरु के चरणों में बैठकर आत्म-अनात्म विवेक रूप वेदान्तज्ञान प्राप्त करके, अपने आपको जगत की अधिष्ठानभूत, शाश्वत दिव्य सत्ता जानकर उस ज्ञान में स्थिर हो जाना चाहिए।

हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्त

एक अनन्त, अद्वय, दिव्य सत्ता ही परमात्मा है।

परमात्मा एक है, और वे सच्चिदानन्द स्वरूप है।
यह दिव्य एवं चिन्मयी सत्ता ही सब की आत्मा एवं जीवन की तरह अभिव्यक्त हो रही है।

परमात्मा के पास एक दिव्य, अनिर्वचनीय, त्रिगुणात्मिका 'माया' शक्ति है।

यह माया परमात्मा की शक्ति है, कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

अपनी माया शक्ति को धारण करके परमात्मा ही जगत की उत्पत्ति-स्थिति एवं नाश करते है।

प्रभु अपनी माया के रजोगुण से जगत की उत्पत्ति, सत्वगुण से स्थिति और तमोगुण से प्रलय करते है।

प्रभु-प्रेरित माया से सृष्टि उसी प्रकार उत्पन्न होती है, जैसे कि बीज में से वृक्ष।
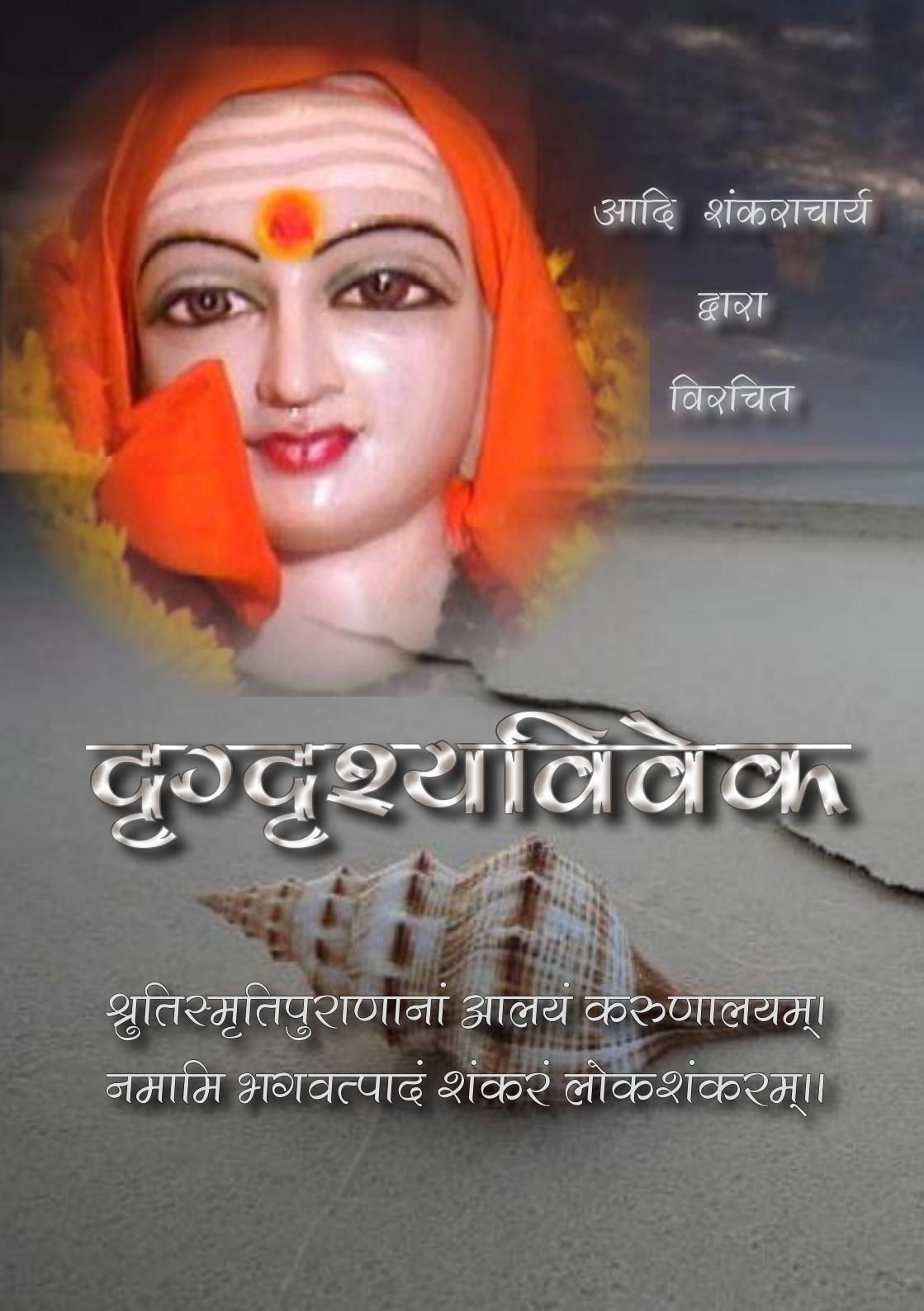
दृग्दृश्यविवेक

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

देहाभिमाने गलिते
विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति
तत्र तत्र समाधयः।।

'देहाभिमान का नाश तथा परमात्मा का विज्ञान होने पर जहां कहीं भी मन जाता है, वहीं समाधि है।'

दृग्दृश्य विवेक

आचार्य ने निदिध्यासन का प्रकरण आरम्भ करते हुए सविकल्प और निर्विकल्प समाधि तथा उसमें दो प्रकार की समाधि अन्त: और बाह्य समाधि बताई। उसकी प्रक्रिया को भी विस्तार से वर्गीकरण करते हुए बताया। उसका सतत अभ्यास करते हुए अपने जीवनकाल को व्यतीत करना चाहिए। अब यहां समाधि के विषय का उपसंहार करते हुए समाधि का स्वरूप बताते हैं।

जब आचार्य ने यह बताया कि इन समाधि का निरन्तर अभ्यास करते हुए काल को व्यतीत करना चाहिए। ऐसे में स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यदि समाधि का सतत अभ्यास करना है तो उसमें कर्तव्यता होगी,

दृग्दृश्यविवेक

तो मुक्ति संशयित होगी? अथवा मुक्ति समाधि के अभ्यास पर ही आश्रित होगी? ऐसी मुक्ति तो इष्ट नहीं है। इस संशय का समाधान दिया जा रहा है। यह समाधि आवागमन वाली नहीं है; किन्तु सर्व-कालिक, सर्व-देशीय और सहज रहनेवाली है।

> 'देह के धर्मों का निषेध ही देहात्मबुद्धि की समाप्ति अभिप्राय है।'

समाधि के बारे में अनेकों धारणाएं प्रचलित होती है। समाधि को किसी क्रिया के साथ जोड़ दिया जाता है। उसे किसी एकान्त स्थान में बैठकर, प्राणायाम के द्वारा मन को संयमित, शान्त और स्थिर करने का पर्याय माना जाता है - यह भ्रान्ति है। ऐसी समाधि प्रयासजनित और आवागमन वाली ही होगी। समाधि का प्रयोजन मन को कुछ देर शान्त व निष्क्रिय करना नहीं है। अन्यथा संकुचित

दृग्दृश्यविवेक

जीव के पुरुषार्थ पर आश्रित होगी। ऐसी समाधि कालसापेक्ष व नैमित्तिक, अस्थायी ही होगी। समाधि के अभ्यास से सहजावस्था की प्राप्ति होती है, जो जीव के प्रयासजनित नहीं है।
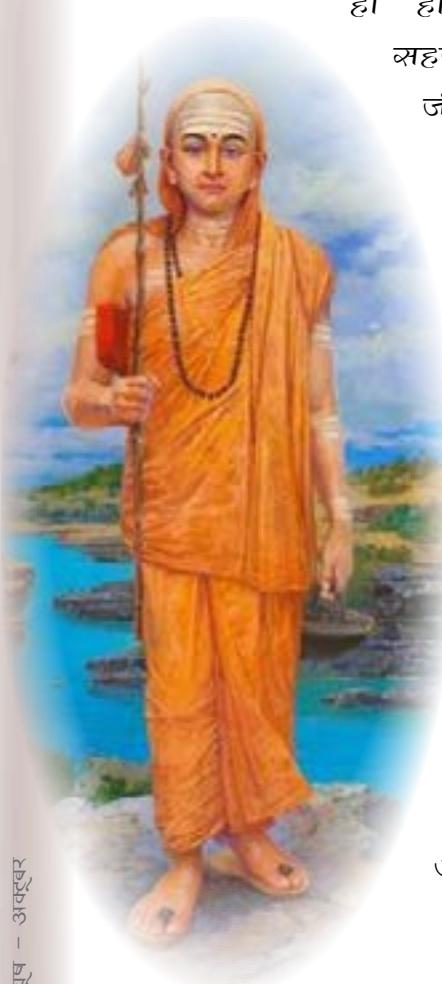
श्रवण, मनन और निदिध्यासन का आश्रय लेकर अपने बारे में देहादि उपाधि से परे, चिन्मयी सत्ता होने का निश्चय किया जाता है। श्रवण और मनन में जिसका निश्चय करके, उसे संशयरहित देखा है। उस विषयक अपने विपर्यय को सतत समाधि के अभ्यास से दूर किएं। तब मन पूर्णत: अपनी ब्रह्मस्वरूपता में समाहित है। अर्थात् अब मन में किसी भी प्रकार से देहात्मबुद्धि का अस्तित्व नहीं है। आचार्य बताते

दृग्दृश्यविवेक

हैं जब यह देहादि उपाधि मैं हूं; यह अभिमान गल जाता है अर्थात् अज्ञान के नष्ट होने पर उसमें आत्मबुद्धि नहीं रहती है। देहाभिमान समाप्त होने का अभिप्राय देहादि उपाधियां बनी हुई हैं; किन्तु उसके धर्म हमारे धर्म हैं, इस भ्रम की समाप्ति हो जाती है। अतः हमारी अस्मिता संकुचित उपाधि वा उसकी विशेषताओं के माध्यम से नहीं आती है। अपने आपको ब्रह्मस्वरूप जान लिया है, अतः पूर्णता की अस्मिता से युक्त है।

'जीव का अस्तित्व प्रारब्धकर्म पर्यन्त बना रहता है।'

आरम्भ में तीन प्रकार के तादात्म्य की चर्चा की गई थी, उसमें कर्मजन्य तादात्म्य अर्थात् जब तक शरीर के प्रारब्ध है, तब तक उपाधि बनी रहेगी और उसमें जीव की प्रतीति भी होती रहेगी। किन्तु भ्रान्तिजन्य

दृग्दृश्यविवेक

तादात्म्य समाप्त हो जाने से अस्मिता उससे नहीं प्राप्त होती है।

व्यवहार यथावत् होता है, किन्तु ज्ञानचक्षु से युक्त है। जिस प्रकार आभूषण के नामरूप देखने के समय भी उसके अधिष्ठान स्वर्ण का ज्ञान बना रहता है। अथवा दर्पण में प्रतिबिम्ब को देखकर उसका प्रयोग भी कर रहे है, किन्तु इस अवेरनेस से युक्त है कि यह हम नहीं, हमारी अभिव्यक्ति है। अत: व्यवहार भी हो रहा है। इसे ही आचार्य यहां बता रहे हैं कि मन जहां पर भी जाता है, इस अवेरनेस से युक्त है कि यह सब माया का विलास है। वस्तुत: सब का सत्य ब्रह्म ही है। व्यवहार के समय ब्रह्मस्वरूपता की अवेरनेस बनी रहना ही समाधि का स्वरूप है।

Vibhooti Darshan

गीता अध्याय : 8

अक्षर ब्रह्म योग

अक्षर ब्रह्म योग

गीता के सातवें अध्याय के अन्त में भगवान ने बताया कि तत्त्व का ज्ञान होने पर वह समग्रता से अधिभूत, अधिदैवादि को जानता है, तथा अन्त काल में हमारा स्मरण करके हमें प्राप्त कर जाता है। इन नए शब्दों के प्रयोग से अर्जुन अपरिचित था, अत: उस विषयक जिज्ञासा से आठवें अध्याय का आरम्भ होता है। इस अध्याय में श्लोक है।

अर्जुन पूछता है कि ब्रह्म क्या है; अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव का क्या अर्थ होता है। इस शरीर में अधियज्ञ कौन है तथा अन्तकाल में, जिस समय प्राण नीकलते है तो आपका स्मरण कैसे होता है? इन समस्त प्रश्नों की जिज्ञासा के शमन रूप यह अध्याय है।

अक्षरब्रह्म योग

अर्जुन में भगवान के प्रति पूर्ण शरणागति, श्रवण के लिए उपलब्धता द्योतित होती है। भगवान अर्जुन के प्रश्नों का उत्तर देते हुए बताते हैं कि ब्रह्म अक्षर तत्त्व है। यहां दो प्रकार की चीजें है, क्षर और अक्षर। क्षर अर्थात् जो परिवर्तनशील, नश्वर है,इन्द्रियादि के द्वारा ग्राह्य है। तथा अक्षर अर्थात् जिसका नाश, परिवर्तन नहीं होता है। यह क्षर विषय का मूलतत्त्व ब्रह्म है। ब्रह्म को जानने के लिए क्षर चीजों से ध्यान हटाना पडता है। जिस समय मन में क्षर विषयों का महत्व खतम होकर, उससे मुक्त होता है, तब ही उसके अधिष्ठानभूत अक्षरतत्त्व का ज्ञान होता है। क्षर विषय महत्वविहीन तथा व्यवहार असार दीखने पर ही उसका ज्ञान सम्भव होता है। वही ब्रह्म साक्षात्कार का तरीका है। वही परं अर्थात् देशादि परिच्छेद शून्य, सर्वत्र व्याप्त है। उसे कर्म से नहीं किन्तु ज्ञान से ही प्राप्त किया जाता है।

अक्षरब्रह्म योग

अध्यात्म से अभिप्राय स्वभाव: अर्थात् अपना मूलभूत सत्य। अपनी गहराई में जाने पर अपने नए नए आयाम से परिचित होते जाते हैं। अध्यात्म ज्ञान से ही स्व की सत्यता को जाना जाता है।

'मनुष्य के पास कर्म की स्वतंत्रता और उसके द्वारा परिवर्तन का सामर्थ्य है।'

कर्म - भूतभावोद्‌भवकरो...। जहां कोई उत्पत्ति, अभिव्यक्ति होती है। कर्म में कुछ न कुछ उत्पन्न होता है। किसी संकल्प व उसका क्रियान्वयन होने पर उसकी अभिव्यक्ति कर्म है। वह संकल्प प्रयास है, जिससे कुछ उत्पत्ति वह कर्म है। अन्तत: विसर्ग अर्थात् त्याग होता है। कर्म में हम संकल्प करके उसमें अपना प्रयास लगाते हैं। मनुष्य के पास कर्म की स्वतंत्रता तथा उसके द्वारा परिवर्तन का सामर्थ्य है। अधिभूत - क्षरोभाव। भौतिक पदार्थों से निर्मित जो सतत क्षर अर्थात्

अक्षरब्रह्म योग

विकारादि होकर नाश की दिशा में जाता है। अधि दैवं – परं पुरुष। जो सब में चेतना है। देवता प्रकृति की शक्ति है। प्रत्येक इन्द्रिय के अपने देवता होते हैं। उनके सब के जो अधिष्ठातृ देवता वह परं पुरुष है। अधियज्ञ – अहं एव अत्र देहे...। सच्चिदानन्द तत्व ही अधियज्ञ है। समस्त यज्ञकर्ता उनकी ही प्रसन्नता के लिए समस्त यज्ञ करते हैं।

अर्जुन के अन्तिम प्रश्न का भगवान विस्तृत उत्तर देते है। अन्तकाले च मामेव.....मद्भावं याति न संशयः। अन्तिम समय में जो मेरा ही स्मरण करके देह त्यागता है, वह मुझे ही प्राप्त करता है। क्योंकि अन्तिम समये या मतिः सा गतिः। यद्यपि अन्तिम समय में संकल्पपूर्वक कर्म का, विचार का सामर्थ्य व स्वतंत्रता नहीं होती है। किन्तु जीवनभर

अक्षरब्रह्म योग

जो कार्य संकल्पपूर्वक, भावना का समावेश करते हुए किया है, उसके ही संस्कार बनते है। जिसे दिल से करते है, उसके संस्कार गहन होते है। संस्कार के निर्माता हमारे ही संकल्प होते है। अपने से पृथक के विषय में ही विचार व स्मरण होता है।

'ब्रह्मज्ञानी आवागमन से युक्त संसार से मुक्त होता है।'

जिसमें अपनी ब्रह्मस्वरूपता की अवेरनेस जग गई, उसके लिए विस्मृति नही होती है; अत: वहां स्मरण का प्रश्न ही नहीं बनता है। अत: ब्रह्मज्ञानी की कोई गति नहीं होती है। वे आत्मा में संतुष्ट, ब्रह्मलीन हो जाते है। यह सिद्धान्त है कि अन्तकाले या मति: सा गति:। तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। सतत हमारी अवेरनेस बनाए रखते हुए, परिस्थिति के औचित्य कर्म करें। क्योंकि

अक्षरब्रह्म योग

जिसकी प्राथमिकता होगी, उसका ही स्मरण होगा। कर्मफल महत्वपूर्ण होगा, तो उसका स्मरण होगा। किन्तु कर्मफलदाता, जगदीश्वर का महत्व होने पर उन्हींका स्मरण होगा। अत: प्रामाणिक ज्ञान से युक्त जीवन में परं सत्य का स्मरण बना रहे।

उसके लिए अभ्यासयोगेन.........ध्यान की साधना व अभ्यास किया जाना चाहिए। अन्तिम समय में जैसा होना चाहते है, उसका इसी समय अभ्यास करें। उसके लिए जो परं पुरुष की प्राप्ति कर लेता है उसके लक्षण प्रदान करते हैं।

वह पुरुष कवि अर्थात् सर्वज्ञ, सब से आदि, सर्वेश्वर आदि लक्षण से लक्षित हैं। ध्यान का अभ्यास करने के लिए भ्रुकूटी के मध्य में अर्थात् मन को स्थिर करने का अभ्यास हो।

अक्षरब्रह्म योग

और परं सत्य स्वरूप, ईश्वर का स्मरण धन्यता से, समस्त उर्जा, भावना, विचार सब एक ही जगह केन्द्रित करते हुए एक में मन लगाते हैं। वे प्रयाणकाल अर्थात् शरीर त्यागते समय इस प्रकार का योगाभ्यास करके परं पुरुष को प्राप्त कर जाते हैं।

वह पुरुष जिसे वेदवित् अक्षर तत्त्व बताते हैं। तथा जिसमें ब्रह्मचर्य आदि का पालन करके यतिगण वैराग्य से युक्त होकर प्रवेश करते हैं। अन्त समये उक्त अभ्यास की वजह से बाह्य जगत के प्रति महत्वबुद्धि से रहित अपनी इन्द्रियों का निरोध करके प्राण को मस्तिष्क में स्थापित करके ओम् का उच्चारण करते हुए, निर्गुणस्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करते हुए अपने प्राण को त्यागते हैं। वे उस परं पुरुष

'अन्तकाल में जैसी सोच होती है; वैसी ही गति होती है।।'

अक्षरब्रह्म योग

को प्राप्त कर जाते हैं। जो मेरा अनन्य भाव से स्मरण करता हैं, वे इस दु:ख के निवास रूप अनित्य शरीरादि को प्राप्त नहीं करते हैं। अर्थात् उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है।

परमात्मा को छोड़कर किसी भी अन्य प्रकार की गति आवागमनवाली होती है। क्योंकि वे सब काल से परिच्छिन्न है। ब्रह्मलोक अर्थात् ब्रह्माजी के लोक में काल की अवधि सापेक्ष रूप से बहुत विस्तृत होती है। ब्रह्माजी का एक दिन और एक रात्रि सहस्र चतुर्युग पर्यन्त होते है। एक कलियुग ४,३२००० मनुष्य के वर्ष के बराबर होता है, उसका दुगुना द्वापर अर्थात् ८,६४००० वर्ष, उसी प्रकार द्वारा से दुगुना त्रेता और त्रेता से दुगुना सतयुग होता है। यह चारो मिलाकर एक चतुर्युग होता है। और एक चतुर्युग ब्रह्माजी का एक दिन और एक चतुर्युग ब्रह्माजी की एक रात्रि होती है।

अक्षरब्रह्म योग

ब्रह्माजी के दिन और रात में सृष्टि और प्रलय होते हैं। उसमें समस्त जीव व्यक्त और अव्यक्त होते रहते हैं। जो उपासना के बल से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, वह ब्रह्माजी के सौ वर्ष होने तक ब्रह्मलोक में रहता है और ब्रह्माजी की समाप्ति के साथ मुक्त होता है। किन्तु जिसका यहीं पर रहते रहते अज्ञान और तज्जनित संसार नष्ट हो गया वह हमारे ही लोक को अर्थात् स्वरूप को प्राप्त कर जाता है; इस प्रकार यहीं पर रहते रहते मुक्त हो जाता है।

'कर्मजनित सभी लोक काल के रेंज में विद्यमान होने से आवागमन वाले हैं।'

यहां भगवान् दो प्रकार की गतियां बताते हैं। १. शुक्ल गति और २. कृष्ण गति। कृष्णगति सकामभाव से कर्म करने के कारण प्राप्त होने वाली गति है। उसके देवता धूम्र, रात्रि आदि रूप हैं। वह दक्षिणायन मार्ग से कृष्णगति

अक्षरब्रह्म योग

को प्राप्त करता है। उसका सतत आवागमन रूप संसार बना रहता है। दूसरी शुक्ल गति है। जिसके देवता अग्नि, सूर्य आदि रूप हैं। वह उत्तरायण मार्ग से गमन करता है। और शुक्ल गति को प्राप्त करने के कारण ब्रह्माजी के साथ मुक्ति को प्राप्त होता है। इस प्रकार ये सभी लोक काल के रेइल्म में हैं। किन्तु जो इसकी असारता, सापेक्षत्व जानता है, वह उसके मोह से मुक्त हो जाता है। और ज्ञान प्राप्त कर अज्ञान नष्ट करके हमें ही प्राप्त कर जाता है। अतः अर्जुन! यही इष्ट है, ऐसा जानते हुए इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर निष्काम कर्मयोग का आश्रय लेना चाहिए।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

—१२—

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

लक्ष्मणजी प्रभु के द्वारा किए जानेवाले धनुर्भंग की पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर देते हैं। उन्हें यह ज्ञात था कि राजा जनक की प्रतिज्ञा और भाषण ही श्रीराम के द्वारा धनुर्भंग किए जाने में सब से बड़ी बाधा है। जब वे यह घोषणा करते हैं कि धनुर्भंग करनेवाले को अतुलनीय कीर्ति प्राप्त होगी, तब इस वाक्य से उन्हीं को प्रेरणा प्राप्त हो सकती है - जो कीर्तिकामी हैं। प्रभु में कीर्ति की कामना का प्रश्न ही कहां है? जनक की प्रतिज्ञा में दूसरा प्रलोभन मैथिली की उपलब्धि का था। उसका भी श्री राम के लिए कोई अर्थ नहीं था; क्योंकि भगवती सीता तो उनकी अभिन्न शक्ति ही हैं। इस तरह जनक की प्रतिज्ञा में कोई ऐसा वाक्य नहीं था जो प्रभु को धनुर्भंग के लिए प्रेरित कर पाता।

श्री लक्ष्मण चरित्र

लक्ष्मण के इस भाषण ने स्वयंवर की सारी पृष्ठभूमि को ही परिवर्तित कर दिया। महर्षि विश्वामित्र ने उचित समय देखकर प्रभु राम से धनुष तोड़ने का अनुरोध किया पर उसका उद्देश्य मैथिली या कीर्ति की उपलब्धि न होकर जनक के शोक का निवारण करना था, और वह उन्होंने कर दिया।

'बिस्वामित्र समय सुभ जानी।
बोले अति सनेहमय बानी।।
उठहु राम भंजहु भव चापू।
मेटहु तात जनक परितापू।।'

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लक्ष्मण का उद्देश्य अपने आक्रोश और शौर्य का प्रदर्शन करना न होकर धनुर्भंग के धरातल को स्वयंवर, सभा के स्थान पर महाशक्ति और ब्रह्म के एकत्व के दर्शन तक पहुंचाना था। वस्तुतः उनकी दृष्टि से धनुष एक सघन अन्धकार था। अन्धकार में वस्तु और पदार्थ अपने वास्तविक रूप में दिखाई नहीं देते। सीता-राम शाश्वत रूप में एक दूसरे से मिलते हैं, पर इस अन्ध

श्री लक्ष्मण चरित्र

-कार के कारण उनका वास्तविक स्वरूप जनक और दूसरों की दृष्टि से ओझल था। श्री राम के द्वारा धनुर्भंग के माध्यम से सूर्योदय हुआ और जनक इस दिव्य प्रकाश में मैथिली और राघव के स्वरूप का साक्षात्कार कर सके।

धनुर्भंग के पश्चात् परशुरामजी का आगमन होता है। इस प्रसंग में लक्ष्मणजी की भूमिका अत्यन्त विलक्षण और कठिन थी।

विभूति दर्शन

—१६—

ऋषीकेश
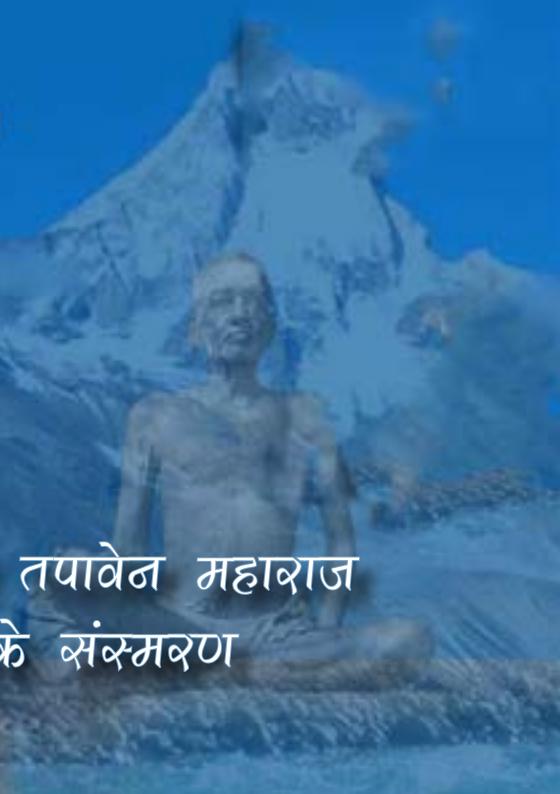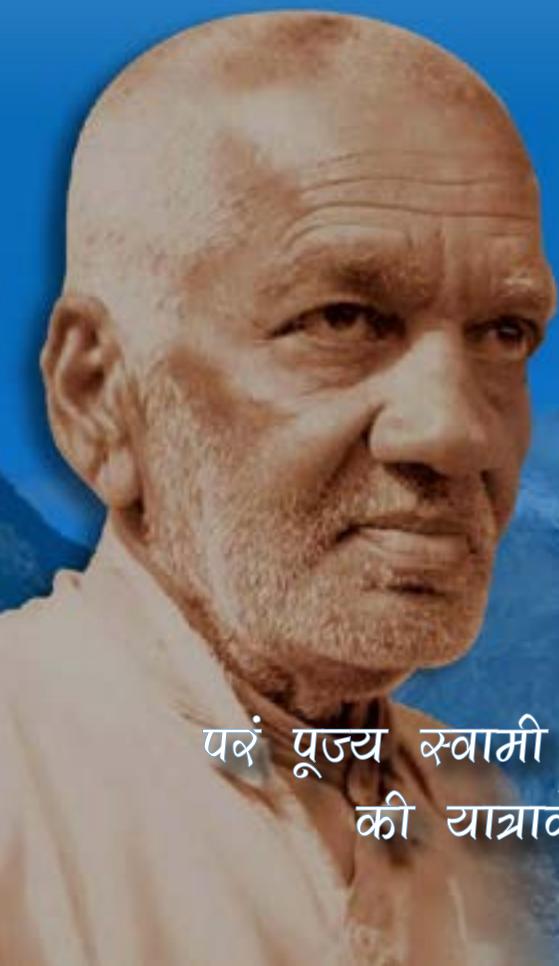
परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवन्मुक्त

प्रख्यात स्वामी रामतीर्थजी ने अमेरिका की यात्रा से लौटकर इसी टहरी नगर में अपने अन्तिम दिन व्यतीत किये थे। विल्लंगणा नदी के किनारे एक कुटीर में वे रहा करते थे और इसी नदी में उन्होंने अपने शरीर का परित्याग किया था। इस मार्ग से आते जाते इस प्रदेश में पहुंच जाने पर स्वामी रामतीर्थजी और उनके शोचनीय अंत के बारे में विषाद की कुछ तरंगे मेरे अन्तकरण में उठा करती हैं। अंग्रेजी में लिखी उनकी एक जीवनी के द्वारा केरल में रहते हुए भी वे मेरे लिए सुपरिचित थे। फिर भी उनके

जीवन्मुक्त

संन्यास जीवन आदि का इतिहास सच्चे और विशद रूप में समझने का अवसर मुझे यहीं मिल सका था।

टहरी नगर में आदि बद्रीनाथ का एक मुख्य और मनोहारी मंदिर स्थित है। बद्रीनाथ टहरी गढवाल के राजाओं की परंपरागत उपासना के कुल देवता है। कहा जाता है कि इस राजवंश के कुछ प्राचीन राजाओं की पुकार पर बद्रीनाथ प्रत्यक्ष हो जाया करते थे।

लीजिएं, यहा से सीधे पश्चिमोत्तरी दिशा में गंगा किनारे से होकर पथ उपर की ओर जा रहा है। यहां से पैतालीस मील की दूरी पर उत्तरकाशी स्थित है। शरीर स्वस्थ होने पर मैं यहां से दो दिनों में सौम्यकाशी पहुंच जाया करता हूं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने पहले ही यह जानकर मुझे कृश शरीर और लंबे पैर दिये होंगे कि मुझे एक साधु के रूप में हिमगिरि

जीवन्मुक्त

पर पैदल ही परिव्रजन करना पडेगा; कभी कभी यह सोचकर मैं उस दयानिधि की मन ही मन वन्दना करता हूँ। ईश्वर की कृपा की कोई सीमा नहीं होती। 'मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्'-- ऐसा भक्ति सूत्रकार का कहना है। ईश्वर की करुणा ही वास्तविक करुणा है, अर्थात् ईश्वर निरपेक्ष करुणा का सागर है। उनकी कृपा में श्रद्धा न रखनेवाले दु:खी होते हैं। भगवान् की कृपा में श्रद्धा रखनेवाले के लिए दु:ख का कौन सा कारण हो सकता है? सभी दशाओं में आनंद ही आनंद है। इसे छोड और कोई भावना उनमें हो ही नहीं सकती। सूत्र का तात्पर्य हैं कि इस संसारमें उत्कृष्ट लाभों की उपलब्धि में ईश्वर करुणा ही मुख्य साधन है, दूसरे सब पुरुषार्थ गौण है।

पौराणिक गाथा

मरने के बाद भी बेकार

महाभारत में एक प्रसंग प्राप्त होता है कि एक बार एक सियार भूख से व्यथित होकर इधर-उधर भोजन की तलाश में भटक रहा था। भटकते हुए जंगल में उसे एक मनुष्य का शव मिला। वह अत्यंत प्रसन्न हो कर भगवान का धन्यवाद करते हुए उस शव को खाने के लिए प्रवृत्त हुआ। सर्व प्रथम, वह उस मनुष्य के हाथ को खाने के लिए आगे बढा। उतने में ही आकाशवाण ी हुई कि 'हे शृगाल! यह हाथ छोड़ दे। यह खाने योग्य नहीं है, यह पापमय है, क्योंकि यह वे हाथ है, जिन्होंने कभी दान नहीं दिया है, बल्कि केवल अपना ही पेट भरने के लिए काम किया है।

यह सुनकर सियार हाथ छोडकर कान की तरफ आगे बढा, तो इतने में ही फिर आकाशवाणी हुई कि हे सियार! यह कान भी खाने योग्य नहीं है, क्योंकि इस कान ने सरस्वती का द्रोह किया है, इस कान ने कभी

मरने के बाद भी बेकार

सत्संग के दो शब्द तक नहीं सुने हैं। पुनः कान को छोडकर वह सियार उस आदमी की आंख को खाने बढा, उसे फिर वही आवाज सुनाई पड़ी कि ये आंख भी खाने योग्य नहीं हैं, क्योंकि इन आंखों के द्वारा कभी किसी साधु का दर्शन नहीं किया गया। सियार ने नेत्रों को भी त्याग कर पूछा कि, क्या मैं इसके पैर खा सकता हूँ? वो ही वाणी उसे फिर सुनाई पडी – 'बिलकुल नहीं, क्योंकि ये पैर कभी तीर्थ स्थानों की तरफ नहीं मुड़े है'।

वह बोला कि फिर मैं क्या खाऊँ? आकाशवाणी हुई कि इनका मस्तिष्क सदैव गर्व से ऊँचा रहा है, कभी किसी के सामने झुका नहीं है तथा इनका पेट अन्याय से अर्जित धन से भरा हुआ है। इस धर्मविहीन, पापाचारी मनुष्य का प्रत्येक अंग पापमय है। अतः 'हे सियार, तुम शीघ्र ही इस शव को छोड दो, क्योंकि यह अत्यंत नीच एवं पापमय है। यह सुनकर सियार अत्यंत भूखा होने के बावजूद यह बोलते हुए चल दिया कि ऐसा निकृष्ट भोजन खाने से तो भूखा मर जाना ही ज्यादा अच्छा है।

मरने के बाद भी बेकार

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपटौ सारस्वत दोहिणौ।
नेत्रे साधुविलोकनेन रहितौ पादौ न तीर्थंगतौ।।
अन्यायार्जित वित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरम् ।
रे रे जम्बूक! मुंच मुंच सहसा! नीचं सुनीचं वपुः।।

हे सियार! इस व्यक्ति के शरीर को तुरन्त ही छोड़ दे, जिसने अपने हाथों से दान नहीं किया है, कान से सत्संग नहीं सुना है, आंखों से कभी किसी सन्त के दर्शन नहीं किए है। कभी किसी तीथाटन नहीं किया है। और उसका उदर भी अन्याय से अर्जित अन्न से भरा हुआ है। उसका सिर सदैव गर्व से उन्नतम्म है, जो किसी के सामन झूका नहीं है।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

आश्रम में गंगा आगमन

९ सितम्बर २०२१

आश्रम समाचार

शिवजी की सुन्दर झांकी

गंगा प्राकट्य

आश्रम समाचार

९ सितम्बर २०२१

गंगाजल से अभिषेक

आश्रम समाचार

गंगास्तोत्र
का पाठ

जय जय गंगे
जय हर गंगे

आश्रम समाचार

पू. गुरुजी के आशिर्वचन

आश्रम समाचार

भजन और स्तोत्रपाठ

आश्रम समाचार

गंगाजी का आवाहन

आश्रम समाचार

९ सितम्बर २०२१

नमामि गंगे

आश्रम समाचार

भोपाल यात्रा

आश्रम समाचार

भोपाल

सूर्यास्त दर्शन

आश्रम समाचार

वन विहार
भोपाल

राजा भोज

आश्रम समाचार

रंगबिरंगी पक्षीवृन्द

आश्रम समाचार

यो देव: खगरूपेण द्रुतं उड्डयते दिवि।

नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नम: ।।

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- ~ Sundar Kand Pravachan
- ~ Monthly Satsang Videos
- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Kathopanishad Pravachan
- ~ Shiva Mahimna Pravachan
- ~ Hanuman Chalisa
- ~ Atma Bodha

Audio Pravachans

- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Atma Bodha
- ~ Sundar kand Pravachan

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - Oct '21

Vedanta Piyush - Sept'21

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

प्रेरक कहानियां
(ओनलाईन)

YouTube चेनल पर प्रसारण

आश्रम महात्माओं के द्वारा

प्रतिदिन प्रातः ७.00 बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन
(शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी